**ओ३म्**

**“त्रैतवाद ‘ईश्वर-जीव-प्रकृति’ सिद्धांत के उद्गाता महर्षि दयानंद”**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

 महर्षि दयानन्द ने जब उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में वैदिक धर्म का प्रचार आरम्भ किया तो उस समय त्रैतवाद की कहीं चर्चा नहीं होती थी। विद्वत जगत में आचार्य शंकर प्रोक्त अद्वैतवाद प्रतिष्ठित था जो केवल एक ईश्वर की ही सत्ता को मानता है, जीव व प्रकृति की पृथक व अनादि स्वतन्त्र सत्ता को नहीं। उन दिनों भक्तिवाद का भी जोर था जिसके अनुसार पुराणों के आधार पर प्रचलित मान्यताओं के अनुरूप मन्दिरों में जाकर भिन्न-भिन्न देवी-देवताओं की मूर्तियों के आगे वन्दन, सिर नवाना, पूजोपचार व व्रतोपवास आदि करने को ही जीवन का उद्देश्य और मनुष्य जन्म की सफलता माना जाता था। महर्षि दयानन्द ने वेद, वेदांग, उपांग, उपनिषद सहित समस्त उपलब्ध प्राचीन साहित्य का अध्ययन किया था जिससे वह जान सके कि ईश्वर का जीवात्मा और प्रकृति से पृथक स्वतन्त्र अस्तित्व हैं। ईश्वर से अतिरिक्त जीव व प्रकृति पृथक हैं, यह ईश्वर के बनाये व उसके अंश आदि नहीं हैं। जीव अनादि व चेतन तत्व है जबकि प्रकृति अनादि व जड़ तत्व है और यह दोनों ही अनेक बातों में ईश्वर के वश व नियन्त्रण में हैं। **ईश्वर-जीव-प्रकृति की एक दूसरे से भिन्न पृथक व स्वतन्त्र सत्ताओं को ही त्रैतवाद के नाम से जाना जाता है।** महर्षि दयानन्द जी ने अपनी इन मान्यताओं को बिना किसी की चुनौती के स्वयं ही अपने ग्रन्थों में प्रस्तुत किया है जिससे अद्वैतवाद खण्डित हो जाता है और त्रैतवाद अखण्डित रहता है वा सत्य सिद्ध होता है।

 आईये, ईश्वर-जीव-प्रकृति, इन तत्वों पर आधारित त्रैतवाद सिद्धान्त के पोषक सत्यार्थ प्रकाश के अष्टम् समुल्लास में वर्णित मन्त्रों व इनके भाषार्थ में महर्षि दयानन्द द्वारा किये गये अर्थों को देख लेते हैं। पहले मन्त्र **‘इयं विसृष्टिर्यत आ बभूव यदि वा दधे यदि वा न। यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अंग वेद यदि वा न वेद।।’** का अर्थ करते हुए वह लिखते हैं कि **हे मनुष्य ! जिस से यह विविध सृष्टि प्रकाशित हुई है जो धारण और प्रलयकत्र्ता है जो इस जगत् का स्वामी है जिस व्यापक में यह सब जगत् उत्पत्ति स्थिति, प्रलय को प्राप्त होता है सो परमात्मा है। उस को तू (मनुष्य वा जीवात्मा) जान और दूसरे को सृष्टिकर्त्ता मत मान।** हमारी टिप्पणी-यहां महर्षि दयानन्द ईश्वर को सृष्टि का धारणकर्ता, प्रलयकर्त्ता, जगत का स्वामी और जगत में व्यापक सत्ता बता रहे हैं। वह यह भी बताते हैं कि यह विविध सृष्टि ईश्वर से प्रकाशित है। ईश्वर व प्रकृति से भिन्न जीवात्मा को यहां ‘तू’ शब्द से वर्णित किया गया है और उसे ईश्वर को जानने व अन्य किसी सत्ता को ईश्वर के स्थान पर मानने का निषेध कर रहे हैं।  **यह मन्त्रार्थ ईश्वर-जीव-प्रकृति अर्थात् त्रैतवाद का बोधक है।**

 दूसरे मन्त्र **‘तम आसीत्तमसा गूळमग्रे ऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्। तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकम्।।’** का अर्थ करते हुए वह कहते हैं कि **यह सब जगत् सृष्टि से पहले अन्धकार से आवृत्त, रात्रिरुप में जानने के अयोग्य, आकाशरूप सब जगत् तथा तुच्छ अर्थात् अनन्त परमेश्वर के सम्मुख एकदेशी आच्छादित था। पश्चात् परमेश्वर ने अपने सामर्थ्य से कारणरूप से कार्यरूप कर दिया।** हमारी टिप्पणी-यहां परमेश्वर व प्रकृति, इन दो तत्वों का वर्णन कर प्रकृति तत्व को सृष्टि की रचना होने से पूर्व अन्धकार से आवृत्त, रात्रि रूप, आकाश रूप, अस्तित्व न होने के कारण जानने के अयोग्य और ईश्वर के सम्मुख एकदेशी के समान एवं तुच्छ वर्णित किया है। तब यह समस्त प्रकृति ईश्वर से आच्छादित थी। यह भी बताया है कि ईश्वर ने अपनी सामर्थ्य से इस कारणरूप प्रकृति को कार्यरूप अर्थात् सूर्य, पृथिवी, चन्द्र, ग्रहोपग्रह, नक्षत्र आदि रूप में बनाया है।

 तीसरे ऋग्वेद 10/129/1 मन्त्र **‘हिरण्यगर्भः समवत्र्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।’** का अर्थ करते हुए महर्षि लिखते हैं कि **हे मनुष्यों ! जो सब सूर्यादि तेजस्वी पदार्थों का आधार और जो यह जगत् हुआ है और होगा उस का एक अद्वितीय पति परमात्मा इस जगत् की उत्पत्ति के पूर्व विद्यमान था। और जिस ने पृथिवी से लेके सूर्य्य पर्यन्त जगत् को उत्पन्न किया है उस परमात्म देव की प्रेम से भक्ति किया करें।** **हमारी टिप्पणीः** यहां महर्षि ईश्वर को सब सूर्यादि तेजस्वी पदार्थों का आधार अर्थात् उत्पत्ति व धारणकर्त्ता, उत्पन्न व उत्पन्न होने वाले जगत् का स्वामी तथा जगत् की उत्पत्ति से पूर्व विद्यमान रहने वाला बता रहे हैं। उसी की प्रेमपूर्वक भक्ति करने का परामर्श भी उन्होंने दिया है। यहां भी ईश्वर (जगत् का अद्वितीय स्वामी), जीवात्मा (भक्तिकर्ता) और प्रकृति (सूर्यादि तेजस्वी पदार्थ) का प्रत्यक्ष वर्णन किया है।

 इसके बाद महर्षि दयानन्द ने यजुर्वेद के 31/2 मन्त्र **‘पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति।।’** प्रस्तुत कर उसका भाषार्थ करते हुए लिखा है कि **हे मनुष्यों ! जो सब में पूर्ण पुरुष (ईश्वर) और जो नाश रहित कारण (प्रकृति) और जीव (जीवात्मा) का स्वामी जो पृथिव्यादि जड़ और जीव से अतिरिक्त है, वही पुरुष (ईश्वर) इस सब भूत, भविष्यत् और वर्तमानस्थ जगत् का बनाने वाला है। हमारी टिप्पणीः यहां भी स्पष्ट रूप से त्रैतवाद का वर्णन किया गया है।**

 स्वामी जी ने तैत्तिरीयोपनिषद् के श्लोक **‘यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म।।’** को प्रस्तुत कर उसका भाषार्थ करते हुए लिखा है कि **जिस परमात्मा की रचना से ये सब पृथिव्यादि भूत उत्पन्न होते हैं जिस से जीते और जिस में प्रलय को प्राप्त होते हैं, वह ब्रह्म है। उस के जानने की इच्छा करो।** **हमारी टिप्पणीः** यहां पृथिवी, सूर्य आदि को ईश्वर की रचना बताया गया है। वही ईश्वर पृथिवी पर जीवन का आधार है और वही जड़ जगत की प्रलय करता है। उस ब्रह्म को जानने की जीव को इच्छा करनी चाहिये। **यहां भी त्रैतवाद का ब्रह्म, पृथिव्यादि और जीवन के द्वारा स्पष्ट उल्लेख है।**

 स्वामी जी ने त्रैतवाद को विस्तार से आगे भी समझाया है। **‘जन्माद्यस्य यतः’**, इस शारीरक सू. 1/2 का अर्थ करते हुए लिखा है कि जिस से इस जगत् का जन्म, स्थिति और प्रलय होता है। वही ब्रह्म जानने योग्य है। इसके आगे कुछ महत्वपूर्ण प्रश्नोत्तर हैं। (प्रश्न) यह जगत् परमेश्वर से उत्पन्न हुआ है या अन्य से? (उत्तर) निमित्त कारण परमात्मा से उत्पन्न हुआ है परन्तु इसका उपादान कारण प्रकृति है। (प्रश्न) क्या प्रकृति परमेश्वर ने उत्पन्न नहीं की? (उत्तर) नहीं। वह अनादि है। (प्रश्न) अनादि किसको कहते और कितने पदार्थ अनादि हैं? (उत्तर) ईश्वर, जीव और जगत् का कारण (अर्थात् प्रकृति) ये तीन अनादि हैं। (प्रश्न) इसमें क्या प्रमाण है? (उत्तर) **‘द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति।’ (ऋग्वेद 1/164/20) एवं ‘शाश्वतीभ्यः समाभ्यः।।’ (यजु. 40/8)।** इनके भाषार्थ महत्वपूर्ण हैं अतः प्रस्तुत हैं। **‘(द्वा) जो ब्रह्म और जीव दोनों (सुपर्णा) चेतनता और पालनादि गुणों से सदृश (सयुजा) व्याप्य व्यापक भाव से संयुक्त (सखाया) परस्पर मित्रतायुक्त सनातन अनादि हैं और (समानम्) वैसा ही (वृक्षम्) अनादि मूलरूप कारण और शाखारूप कार्ययुक्त वृक्ष अर्थात् जो स्थूल होकर, प्रलय में छिन्न भिन्न हो जात है वह तीसरा अनादि पदार्थ, इन तीनों के गुण, कर्म और स्वभाव भी अनादि हैं (त्योरन्यः) इन जीव और ब्रह्म में से एक जो जीव है वह इस वृक्षरूप संसार में पापपुण्यरूप फलों को (स्वाद्वत्ति) अच्छे प्रकार भोक्ता है ओर दूसरा परमात्मा कर्मों के फलों को (अनश्नन्) न भोक्ता हुआ चारों ओर अर्थात् भीतर बाहर सर्वत्र प्रकाशमान हो रहा है। जीव से ईश्वर, ईश्वर से जीव और दोनों से प्रकृति भिन्न स्वरूप, तीनों अनादि हैं।’** इस वेद मन्त्र में तो ईश्वर ने स्पष्ट रूप से त्रैतवाद का विधान किया है। इसके विपरीत अन्य कोई वाद सत्य हो ही नहीं सकता। यहां महर्षि दयानन्द ने जीव व ईश्वर को व्यापक-व्यापक लिखा है। व्यापक का अर्थ है सर्वत्र, सब पदार्थों के भीतर व बाहर, विद्यमान है और व्याप्य का जिसके अन्दर व बाहर व्यापक तत्व अर्थात् ईश्वर है। हमें लगता है कि इस **“व्याप्य-व्यापक सिद्धान्त”** का प्रतिपादन पहली बार शायद् महर्षि दयानन्द ही कर रहे हैं। इनसे पूर्व किसी आचार्य द्वारा इन शब्दों का इस रूप में प्रयोग नहीं किया है। यदि यह सिद्धान्त स्वामी शंकराचार्य जी के समय में विदित व प्रचलित होता तो हो सकता है कि वह इसका खण्डन न कर पाते। (शाश्वती.) इस मंत्र सूक्ति में महर्षि कहते हैं कि अपनी अनादि सनातन जीवरूप प्रजा के लिये वेद द्वारा परमात्मा ने सब विद्याओं का बोध किया है।

 त्रैतवाद से संबंधित उपनिषद का एक महत्वपूर्ण वचन है जिसका उल्लेख भी महर्षि दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश में किया है। वह वचन हैः **‘अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः। अजो ह्येको जुष्माणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः।।’** **इसमें कहा गया है कि प्रकृति, जीव और परमात्मा तीनों अज हैं अर्थात् इनका जन्म कभी नहीं होता और न कभी जन्म लेते अर्थात् ये तीन सब जगत् के कारण हैं। इन तीनों का कारण कोई नहीं है। इस अनादि प्रकृति का भोग अनादि जीव करता हुआ फंसता (जन्म-मरण व पाप-पुण्य चक्र में) है और उस में परमात्मा न फंसता और न उस का भोग करता है।**

 महर्षि दयानन्द जी के विचारों व यथार्थ में ईश्वर, जीव व प्रकृति के स्वरूप व इनके लक्षणों का संक्षेप में चित्रण करते हैं। ईश्वर कि जिस के ब्रह्म परमात्मादि नाम हैं, जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त है, जिस के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं। जो सर्वज्ञ निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता, सब जीवों को उनके कर्मानुसार, सत्य व न्याय से फलदाता आदि लक्षणयुक्त है, वही परमेश्वर है। जीवात्मा व जीव वह है जिसमें इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और ज्ञानादि गुण व जो अल्पज्ञ नित्य है। यह जीव ईश्वर से सर्वथा पृथक सत्ता है। इस प्रकार से ईश्वर व जीव दो सत्तायें सिद्ध होती है। ईश्वर व जीव से भिन्न प्रकृति तत्व के लक्षणों पर प्रकाश डालते हुए महर्षि दयानन्द ने सांख्यसूत्र के वचन **‘सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृति प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारोऽहंकारात् पंचतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं पंचतन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पंचविंशतिर्गणः।।’** को उद्धृत किया है। इसका भाषार्थ हैः **(सत्व) शुद्ध (रजः) मध्य (तमः) जाड्य अर्थात् जड़ता तीन वस्तु मिलकर जो एक संघात है उस का नाम प्रकृति है।** उस से महत्तत्व बुद्धि, उस से अहंकार, उस से पांच तन्मात्रा सूक्ष्म भूत और दश इन्द्रियां तथा ग्यारहवां मन, पांच तन्मात्राओं से पृथिव्यादि पांच भूत ये चौबीस और पच्चीसवां पुरुष अर्थात् जीव और परमेश्वर है। इन में से प्रकृति अविकारिणी और महत्तत्व अहंकार तथा पांच सूक्ष्म भूत प्रकृति का कार्य्य और इन्द्रियां मन तथा स्थूलभूतों का कारण है। पुरुष अर्थात् ईश्वर व जीव न किसी प्रकृति का उपादान कारण है और न ये दोनो चेतन पदार्थ किसी का कार्य्य हैं।

 महर्षि के अनन्य भक्त रक्तसाक्षी पं. लेखराम जी 17 मई, सन् 1881 को अजमेर में महर्षि दयानन्द जी से मिले थे। महर्षि दयानन्द जी ने उनको उपदेश किया और उनसे कहा कि उनके मन में और जितने सन्देह हों, उन सब का निवारण कर लो। पं. लेखराम जी ने तब उनसे 10 प्रश्न किये थे जिनमें से एक था कि जीव-ब्रह्म की भिन्नता में कोई वेद का प्रमाण बतलाइए? इसका महर्षि दयानन्द ने उत्तर दिया कि **यजुर्वेद का 40 वां अध्याय सारा जीव-ब्रह्म का भेद बतलाता है।** व्याप्य-व्यापक सिद्धान्त पर पं. लेखराम जी ने ऋषि से कहा कि जयपुर में एक बंगाली सज्जन उन्हें मिले और प्रश्न किया कि **आकाश भी व्यापक है ओर ब्रह्म भी, दो व्यापक किस प्रकार इकट्ठे रह सकते हैं? पण्डित जी इसका उत्तर नहीं दे सके थे। उन्होंने यही प्रश्न स्वामी जी से पूछा। उन्होंने एक पत्थर उठाकर कहा कि इसमें अग्नि व्यापक है या नहीं? पण्डित जी ने कहा कि व्यापक है। फिर कहा कि मिट्टी? पण्डित जी ने कहा कि व्यापक है। फिर पूछा कि जल? कहा कि व्यापक है। फिर पूछा कि आकाश और वायु? पण्डित जी ने कहा कि व्यापक है। फिर स्वामी जी ने पूछा कि परमात्मा? पण्डित जी ने कहा कि वह भी व्यापक है। तब स्वामी जी ने कहा कि देखो, कितनी चीजें हैं परन्तु सभी इसमें व्यापक हैं। वास्तव में बात यही है कि जो जिससे सूक्ष्म होती है वह उसमें व्यापक हो सकती है। ब्रह्म चूँकि सबसे अति सूक्ष्म है इसलिए वह सर्वव्यापक है। पण्डित जी ने लिखा है कि इससे उनकी जिज्ञासा की शान्ति हो गई।**

 हम आशा करते हैं कि पाठक त्रैतवाद से परिचित होने के साथ इसी मत को स्वीकार करेंगे क्योंकि यही मत वेद सम्मत होने के साथ तर्क व युक्तियों से भी सिद्ध है एवं सर्वथा सत्य है। सत्य एक ही होता है, परस्पर भिन्न मत सत्य नहीं हो सकते।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**